जीवनानंद दास

की

कवितायेँ

■ समीर वरण नंदी

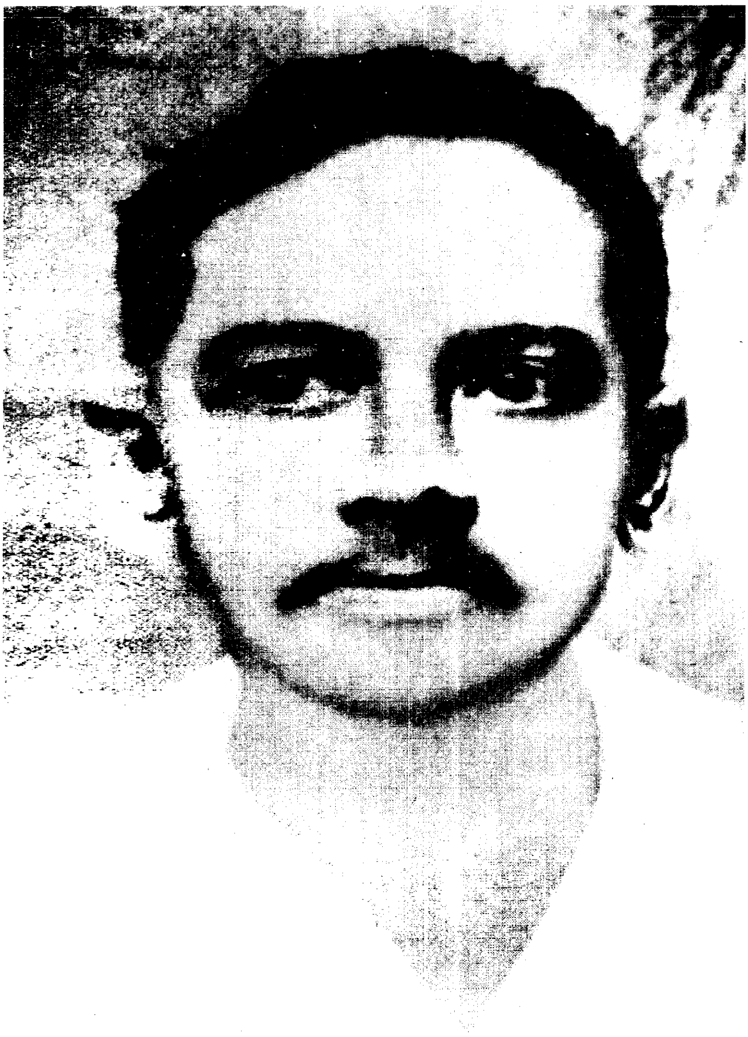

जीवनानन्द दास (१८९९–१९५४)

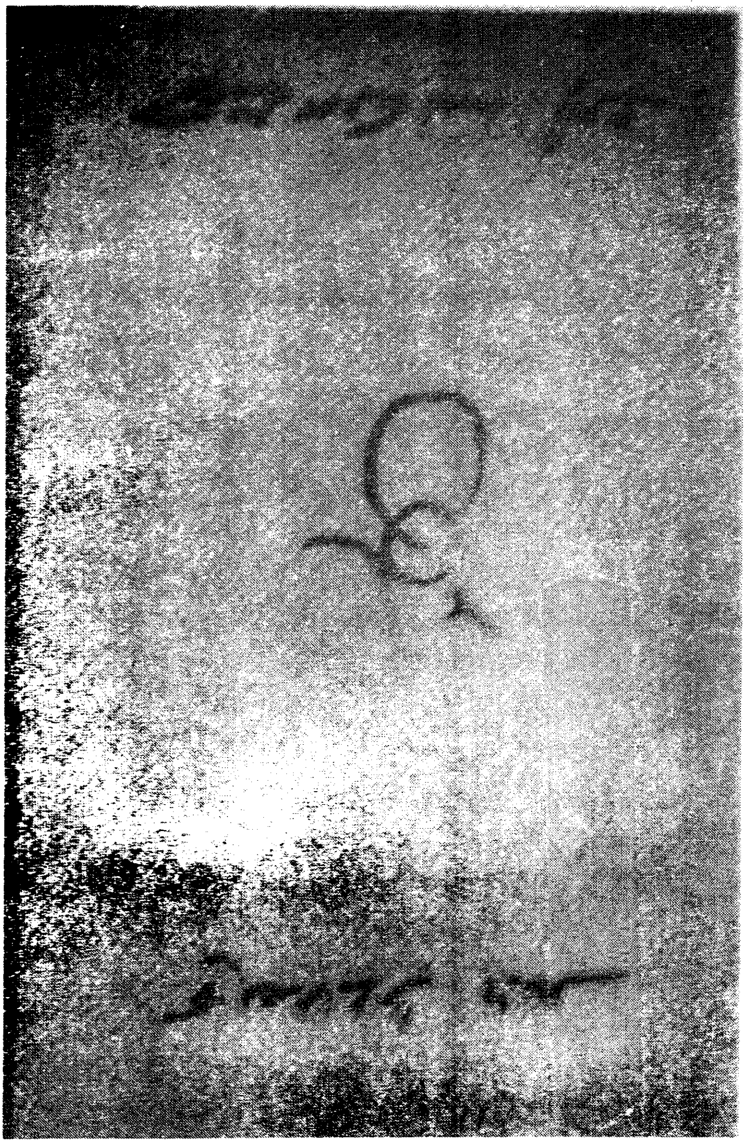

बनलता सेन — १९३८ का आवरण

सभी नहीं कोई–कोई ही कवि होता है

जीवनानन्द दास मानते थे 'सभी नहीं, कोई–कोई ही कवि होता है। क्योकिं उसकी सोच में कल्पना एवं कल्पना के भीतर चिन्ता एवं स्वतंत्र अनुभव रहता है।

सभ्यता के उषाकाल में कविता का जन्म हुआ था। और जन्म के बाद मनुष्य की मृत्यु की तरह कविता की भी मृत्यु अनिवार्य है। मनुष्य की तरह कविता भी मरणशील है।

इतिहास मे निर्मम प्रहारों से अतीत की असंख्य कवितायें कालजयी नहीं हो पायीं, पर कुछ कवितायें मरूकानन की तरह आज भी हैं। जहाँ मनुष्य की सुन्दर–असुन्दरता का अनुभव, जीवन और मृत्यु के महारहस्य में घुल मिल कर आज भी बची हुई हैं। जीवन का म्लान स्पर्श, खण्डित समाज एवं चेतना के तरह–तरह के ध्यान–मुक्ति के प्रयासों से एवं मृत्यु के शीतल स्पर्श से भी कविता जीवित है। आदमी और आदमियों का कुछ संगठन कविता का भी अन्त नहीं कर पायेगें। व्याकरणाचार्य या अक्षम् आलोचकों की संकीर्ण तानाशाही की परवाह कविता नहीं करती। राजसभा या प्रतिष्ठानिक स्वीकृति की जरूरत नही पड़ती। और इसलिए ही जीवन यात्रा की महादुर्योगों के सागर के बीच एक सूर्योज्ज्वल द्वीप की तरह जीवनानन्द प्रतिष्ठित हैं। इसलिए सभी कवि नहीं होते, कोई–कोई ही कवि होता है।

किसी कविता में देवप्रेरणा की बात वे नहीं मानते थे। साथ की केवल बुद्धि द्वारा ही कविता नहीं लिखी जाती इस बात के भी वे प्रतिष्ठापक थे और कल्पना की भूमिका को वे स्वीकार तो करते थे, पर केवल प्रचलित अर्थ में नहीं, इसे उन्होने 'कल्पना आभा' कहा है। कोई परम चैतन्य (ईश्वरीय) उपस्थिति उनके पास कभी फटक नही पाई। और वे एक अभिमाँसित रहस्यमयता की आड़ मे सारा जीवन बिता दिये थे।

उनकी कविता चर्चाओं में कल्पना प्रतिभा एवं भाव प्रतिभा का उल्लेख बार–बार आया है। कविता की अस्थि में रहेगी इतिहास

चेतना और माँस में रहेगा परिछिन्न् काल का ज्ञान। महाविश्वलोक के इशारे पर उत्सरित समय चेतना उनकी कविताओं में हमेशा एक संगति साधक अपरिहार्य सत्य की तरह है। समय और प्रकृति की पटभूमिका में जीवन की सम्भावना पर विचार करके मनुष्य के भविष्य की राह खोजना उनकी कविताओं का लक्ष्य है। यदि विज्ञान बीसवीं सदी के हिसाब से अनिवार्य था, तो भी वही एक मात्र उत्स और परिणति नहीं था। वे मानते थे विज्ञान के वगैर भी सत्य और दिव्यता का लाभ कविता में सम्भव है। सार्थक कविता जिस सुलिपि में बदलती है उसे कुछ लोग 'मायाबल' मानते हैं, पर जीवनानन्द उसे चरित्र बल मानते हैं।

चिन्ताओं के आभामय व्यवहार के प्रकाश और आवेग से मोम की तरह कविता जल उठती है। पर चिन्ता, विज्ञान और मत–विवाद का कंकाल ही कविता नहीं होती, उसके ऊपर कल्पना का प्रकाश एवं आवेग उसे देह प्रदान करती है और उस देह पर सजता है कविता का सबल माधुर्य। कविता की रचना किसी सत् या महत् या किसी विज्ञान प्रामाण्य की राह पर नहीं रचा जाता। न ही किसी इंजिनियरिंग के तहत्। "और तरह के भी सत्य हैं जिन्हे हम लोग पूरी तरह गणित के मार्फत नहीं प्राप्त कर सकते।" कविता ईश्वरजन्य भी नहीं है। कविता दान करती है। उसका काव्य प्रकाश सबसे अधिक राह दिखलाता है। सबसे अधिक सान्तवना देता है सिद्धि देता है। मनुष्य को बीतकामी एवं अशोक भक्ति का पथ बतलाती है। और कविता पूरी तरह शिल्प के लिए शिल्प की कल्पना–विलास भी नही होता। वह वेदना और आनन्द को भी अपनाये होती है–उन्नत्तर संगति के सौन्दर्य से लबालब होता है।

रवीन्द्रनाथ को सार्वभौम कवि के रूप में स्वीकार करके भी जीवनानन्द रवीन्द्र परिक्रमा से दूर हट गये थे। बामपंथियो के 'सूर्योज्जवला' के करीब भी वे नहीं गये। अति अविश्वासी कृश लेखकों में भी वे नहीं शामिल हुए। आधुनिकता भी उनके लिए चुनौती ही थी। समय–काल के अनुरूप आधुनिकता उन्हें ग्राह्य

नहीं थी।

कवि एवं साहित्यकार के शिक्षा के संदर्भ में जीवनानन्द कविता एवं काव्य तत्वों की बृहत संसार से खूब परिचित थे। अरस्तु, शेक्सपीयर, दान्ते, कालिदास, रोमैन्टिकों की इस्तहार, यथार्थवाद परावस्तुवता आदि के बहुमुखी धारणाओं और भावनाओं में वे आश्रय खोजते थे। अडेन की मेमोरियल स्पीच उन्हें आकर्षित नहीं किया था मैथ्यूआर्नल्ड, कोलारिज एवं एलियट की काव्यतत्वों की अनुशीलन में उनका मन रमता था। एलियट की कविताओं के काव्य तत्वों ने भी उन्हें आकर्षित किया था, बावजूद उनकी कवितायें उन्हें बहुत पसंद नहीं थीं। वे कालोतीर्ण नहीं लगती थीं। येट्स के प्रति उनमें जैसा आकर्षण था, वैसा ही अस्वीकार रिल्के के लिए था। कमिन्स की चतुराई भी उन्हें नहीं भाती थी, एजरा पाउण्ड की मननवृत्ति उन्हें लुभाई थी। आरगँ अथवा एल्यूर की तरह परावास्तववादी लेखन के संबंध में जीवनानन्द की भावनायें कहीं व्यक्त नहीं हुई हैं। जबकि शिल्प और साहित्य में परावास्तववाद की ओर से वे बहुत सजग रहा करते थे। हाक्स्ली को उन्होने भविष्य नहीं माना है। दूसरी तरफ उपन्यासकार टामसमैन को इस विपन्न युग का चिन्तानायक मानते थे। ऐसे ही बृहत एक दुनिया जीवनानन्द के मन मस्तिष्क में छायी रहती थी। वे बहुत सी भावनाओं को ग्रहण एवं त्याग कर अपने स्व के निर्दृष्ट एवं उज्जवलता में वे विचरण करते हैं। किसी देशी या बाहरी विचार के छायापात् नहीं बने। येट्स की भी नहीं।

जीवनानन्द से बहुत पहले ही पाश्चात्य साहित्य दर्शन की हवा हमारे देश में प्रचलित हो चुका था। राममोहन राय, बंकिम के रास्ते ही पाश्चात् दर्शन–साहित्य, काव्यतत्व आदि–आदि इस देश की मनन् मिट्टी को छुआ भर था। जो भारतीय नवजागरण की सुनहरी फसलें हैं। बाल्टर स्कट के उपन्यास ही बंकिम की पहली सीढी थी। माइकल मघुसुदन दत्त तो मिल्टन को अलौकिक मानते थे। रवीन्द्रनाथ स्वछंद विचरण किये है वर्ड्सवर्थ, शेली, कीट्स, जड्डान, ब्राउनिंग की दुनिया में।